P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-2* ISSUE-2* May- 2017
E: ISSN NO.: 2455-0817 Remarking An Analisation

मानव अधिकार अवधारणा का विस्तार : पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य

सारांश

वर्तमान मानव अधिकार की अवधारणा पूर्णतया आधुनिक समय की उपज है। मानव अधिकार, अधिकार सम्मत व्यक्ति की स्वतंत्रता, रक्षा (Protection), स्तर (Status) व हितों पर ध्यान केन्द्रित करता है तथा अधिकारों को उच्च वरीयता (High-Priorioty) में रखता है। प्रस्तुत लेख में मानव अधिकार की सामान्य समझ की समीक्षा की जायेगी। किन सैद्धांतिक व वैधानिक आधारों पर तथा विशेष राजनीतिक व सामाजिक परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकार की अवधारणा का विकास होता है? मानवाधिकार के तहत किन महत्वपूर्ण पहलुओं पर जोर दिया जाता रहा है? वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति व अन्धाधुंध औद्योगिक विकास ने बड़े पैमाने पर प्राकतिक संसाधनों व पर्यावरण का दोहन किया है। परिणामस्वरूप मानव स्वास्थ्य को गंभीर खतरा पहुँचा है। ऐसे में लेख इस बात पर ध्यान केन्द्रित करेगा कि व्यक्ति की अन्य सामाजिक–राजनीतिक अधिकारों की तरह पर्यावरणीय सुरक्षा के द्वारा शुद्ध वतावरण व शुद्ध हवा प्राप्त करना व्यक्ति के मानवाधिकार का हिस्सा माना जाना चाहिये।

सुचित कुमार यादव
शोध छात्र,
राजनीतिक शास्त्र विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली

मुख्य शब्द : मानव–अधिकार, पर्यावरण, स्वतंत्रता, रक्षा, उपभोक्तावादी संस्कृति, प्राकृतिक संसाधन।

प्रस्तावना

मानव अधिकार की अवधारणा एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मानवधिकार ऐसे मूल्य हैं, जो समाज में किसी भी व्यक्ति को किसी प्रकार के राजनीतिक वैधानिक अथवा समाजिक दुर्व्यवहार से रक्षा करते है। उदाहरण के लिए धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार शोषण के विरुद्ध तथा राजनीतिक क्रियाकलापों में भागीदारी का मानव अधिकार इत्यादि। अधिकार राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कानूनों के साथ–साथ नैतिकता पर आधारित होते है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न संधि व समझौते के माध्यम से तथा राष्ट्रीय स्तर पर विधायिका के नियम व न्यायपालिका के निर्णयन के माध्यम से मानव अधिकारों को संस्थापित किया जाता है। इन कानूनी पहलुओं के अलावा ऐसा भी माना जाता है कि धरती पर पैदा होने वाला प्रत्येक व्यक्ति कुछ मानवीय अधिकार के साथ ही जन्म लेता है अर्थात् अधिकार मानवीय जीवन का एक अभिन्न अंग है क्योकि यह प्रकृति की देन है।[1]

एलेन ग्रेनविथ (Alan Gewirth) एजेन्सी आधारित मानव अधिकार की अवधारणा पेश करते है उनका मानना है कि मानव प्राणी खुद में एक एजेंसी है अतः इनके समान अधिकार व गरिमा को नाकारा नहीं जा सकता (ग्रेनविथ; 1982)। जेम्स ग्रिफिन (James Griffin) अधिकार के नैतिक व राजनीतिक अवधारणा में अलगाव करते हुए मानवधिकार को मौलिक रूप से नैतिक अवधारणा के रूप में परिभाषित करते है। मानव अधिकार व्यक्ति के रंग, भाषा, राष्ट्र, राज्य, नृजातीयता अथवा स्तर के आधार पर बिना किसी भेद के सार्वभौमिक रूप से सामान व्यवहार का दावा करते है।[2]

सामान्यतया परम्परागत समाज कर्त्तव्य पर आधारित रहा है अतः यहाँ आधुनिक मानव अधिकार जैसी अवधारण नहीं देखी जाती है। इन अधिकारों का बीज यूरोपीय पुनर्जागरण तथा प्रोटेस्टेंट सुधार तथा जमींदारी व्यवस्था व धार्मिक रूढ़िवादिता के क्षरण में देखा जा सकता है। 17वीं सदी के ब्रिटिश दार्शनिक जॉन लॉक ने जीवन, स्वतंत्रता व सम्पत्ति के अधिकारों को प्राकृतिक बताते है। 18वीं सदी के महत्वपूर्ण क्रांतियों[3] ने मानव अधिकारों पर बहस की शुरूआत किया। 19वीं सदी में दास–प्रथा के विरोध में मानव अधिकार अवधारणा केंद्र में रहा। इसी दौरान शासन व्यवस्था के रूप में 'लोकतंत्र' एक सर्वमान्य रूप में वैश्विक स्तर विकसित होने लगा अधिकतर देशों का झुकाव लोकतान्त्रिक शासन

व्यवस्था की तरफ बढ़ा।[4] साथ ही साथ गणतन्त्रवादी मूल्यों को लेकर सामाजिक झुकाव व जागरूकता में तेजी से बढ़ोत्तरी देखने को मिला। 20वीं सदी में हुए विश्वयुद्ध तथा विशाल नरसंहार ने मानव अधिकार के समक्ष एक विशाल चुनौती को खड़ा कर दिया। दोनों विश्वयुद्धों ने मानवाधिकार को नकारात्मक रूप में प्रभावित किया। युद्ध ने न केवल सामाजिक मानवता को नष्ट किया बल्कि मानवीय अस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया। चाहे दिसम्बर 1939 में हिटलर द्वारा पोलैंड पर हमला हो, अथवा 1941 में जापान द्वारा पर्ल–हार्बर हमला या सोवियत संघ पर जर्मनी द्वारा हमला हो, इससे भी बढ़कर 1945 में अमेरिका द्वारा जापान के हिरोशिमा व नागासाकी पर परमाणु बम गिराए जाने जैसी घटनाओं ने मानवीय सभ्यता के अस्तित्व व गरिमा पर ही सवाल खड़ा कर दिया। असंख्य लोगों की आत्मरक्षा हेतु जगह–जगह पलायन करना पड़ा, लाखों–करोड़ों निर्दोषों को बेवजह अपनी जान गवानी पड़ी, हजारों–हजारों मासूम महिलाओं का बलात्कार व हत्या किया गया। इन निर्मम हत्याओं ने मानवता को तार–तार कर दिया। मानव अधिकारों की खुली धज्जियाँ उड़ाई गयी। मानवाधिकार जैसी बहस ही बहुत पीछे छुट गया। ऐसी गंभीर परिस्थिति में पूरे वैश्विक समाज को मानवीय हितों की रक्षा हेतु आगे आने के लिए मजबूर होना पड़ा। यह जरूरी हो गया कि मानवीय अधिकारों का एक वैश्विक मापदंड तय किया जाए। साथ ही इनको एक संस्थागत रूप दिया जाए। इसी क्रम में 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ की आमसभा द्वारा मानव अधिकार का 'सारभौमिक घोषणा पत्र' (Universal Declaration of Human Right & UDHR) जारी किया गया। कई अन्य संस्थाओं व संधियों के माध्यम से इसे संस्थागत रूप देने का प्रयास किया गया। यह अधिकार पत्र का उद्देश्य 'विश्व में स्वतंत्रता, न्याय व शांति के बीज बोना' रखा गया। प्रत्येक सदस्य देशों से माँग की गयी कि वे प्रत्येक व्यक्ति के नागरिक, आर्थिक व सामाजिक अधिकारों को बढ़ावा देंगे।[5]

मानवाधिकार की दार्शनिक/वैचारिक पृष्ठभूमि

मानव अधिकार क्या है? सभ्य मानव समाज में मानव अधिकार का होना क्यों आवश्यक है? इसकी पृष्ठभूमि में देखा जाय तो हम पाते हैं कि 17वीं सदी के ब्रिटिश दार्शनिक जॉन लॉक ने जीवन, स्वतंत्रता व सम्पत्ति के अधिकारों को प्राकृतिक बताते हुए यह दावा पेश करते है उसके जन्म के साथ ही कुछ ऐसे अधिकार मिल जाते जो उसके सामाजिक अस्तित्व का पर्याय होते है। 18वीं सदी के महत्वपूर्ण क्रांतियों ने मानव अधिकारों पर बड़े पैमाने पर बहस की शुरूआत के शुरू किया। मानव अधिकार शब्द 'थॉमस पेन' की रचना 'द राइट्स ऑफ मेन' तथा वी.एल. गेरिसोंन की रचना 'द लिब्रेटर' से निकलता है। जर्मन दार्शनिक इमैनुअल कांट के मानवीय गरिमा (Human Worth) की अवधारणा में मानवाधिकारों के बीज देखा जा सकता है। कांट के अनुसार नैतिक कर्त्तव्य अर्थात् निर्णय निर्माण के दो मौलिक सिद्धांत है – कटेगोरिकल इम्परेटिव तथा Hypothetical इम्परेटिव। कटेगोरिकल इम्परेटिव के तहत कोई भी निर्णय या तो मानवता के सिद्धांत अथवा स्वायत्तता के सिद्धांत के आधार पर लिया जाता है। कांट का मानवता का सिद्धांत मानवीय गरिमा के सम्मान की माँग करती है। व्यक्ति की कीमत एक व्यक्ति के रूप में हो, बजाए इसके कि वह किस पद, व्यवसाय, देश या रूप–रंग से सम्बन्ध रखता है। व्यक्ति कितना बुरा या शातिर क्यों न हो उसे एक व्यक्ति के रूप में गरिमा दिया जाना चाहिए। स्वायत्तता सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक तार्किक व्यक्ति के इच्छा/निर्णय को एक ऐसे इच्छा अथवा निर्णय के रूप में देखा जाना चाहिए जो सारभौमिक नियम का निर्माण करता है। ऐसे में हर व्यक्ति को सारभौमिक नियम निर्माणकर्त्ता के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए न की सारभौमिक नियम पालनकर्ता के रूप में (Universal Law Given, Not Follower) कांट का यही सिद्धांत मानवीय गरिमा के स्रोत के रूप में देखा जाता है। कांट के लिए स्वायत्तता का अर्थ रूसों की स्वायत्तता की तरह किसी कानूनी बन्धन का अभाव नहीं है बल्कि कांट का मानना है कि एक राज्य तभी स्वायत्त है जब तक उसके नागरिक अपने स्वयं के बनाये कुछ नियमों का पालन करते हो।

मानवाधिकार अवधारणा की समिक्षा

वैश्विक स्तर पर मानवाअधिकार के सारभौमिक घोषणा पत्र के द्वारा मानवाधिकार को परिभाषित व संस्थापित किया गया। इस घोषणा पत्र में 30 अनुच्छेद है जिसे विषयानुसार चार भागों में विभाजित किया जाता है। प्रथम भाग 'अनुच्छेद–3 से 11' में व्यक्तिगत अधिकारों की बात की गयी है। ये अनुच्छेद मौलिक रूप से व्यक्ति और कार्यपालिका या वैधानिक व्यवस्था के बीच के संबंधो को परिभाषित करते है। उदाहरण के लिए कानून के समक्ष समान मान्यता प्राप्त करने का अधिकार, एक प्रभावशाली, वैधानिक रक्षा तंत्र (Remedy) का होना, जैसे अधिकारों का जिक्र है। दूसरा भाग 'अनुच्छेद–12 से 17', व्यक्ति का सामाजिक व नागरिक समाज में क्या स्थान होगा, के विषय में चर्चा करता है। उदाहरण के लिए–स्वतंत्र विचरण का अधिकार, राष्ट्रीयता, निजता व सम्पत्ति का अधिकार। तीसरा भाग 'अनुच्छेद–18 से 21' कुछ मौलिक स्वतंत्रता या लौकिक व अलौकिक स्वतंत्रता जैसे – धर्म–अराधना की स्वतंत्रता, सुझाव व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा सामाजिक भागीदारी की स्वतंत्रता इत्यादि विषयों पर केन्द्रित है। चौथा भाग 'अनुच्छेद–22 से 27' व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक अधिकारों का जिक्र करता है।

मानवाधिकार पर इस सारभौमिक घोषणापत्र की कुछ सीमाएँ है। इसकी पहली आलोचना इस आधार पर की जाती है कि यह पूरी तरह पाश्चात्य मान्यताओं द्वारा प्रभावित है। अधिकतर पाश्चात्य मूल्यों व मान्यताओं को ही वैश्विक स्वीकृति प्रदान करने की कोशिश की गयी है।[6] यह घोषणापत्र व्यक्तिगत अधिकार को अधिक महत्व देता है जो कि पाश्चात्य मूल्यों पर आधारित है। गैर–पश्चिमी देशों में सामूहिक अधिकार की अवधारणा प्रबल है जिसमें इसे नकारा गया है। ध्यान रहे की अधिकतर मुस्लिम–बहुल देशों – मिश्र, ईरान, पाकिस्तान तथा प्रमुख रूप से सऊदी–अर जैसे देशों के प्रतिनिधियों ने 1948 की समिति की बैठक में यह कहते हुए अपना विरोध दर्ज कराये थे कि यह अधिकार, स्वतंत्रता व व्यक्ति

P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-2* ISSUE-2* May- 2017
E: ISSN NO.: 2455-0817 Remarking An Analisation

की गरिमा की इस्लामिक अवधारणा को पूरी तरह खारिज करता है। उदहारण के लिए सऊदी–अरब ने घोषणापत्र के अनुच्छेद 16 और 18, जिसमें पुरुष व महिला को अपने पसंद के आधार पर शादी का अधिकार है तथा धार्मिक स्वतंत्रता का जिक्र है, का विरोध यह कहते हुए किया था कि यह हमारे इस्लामिक संस्कृति के खिलाफ है।[7]

मानवाधिकारो की यह अवधारणा नागरिक व राजनीतिक अधिकारों पर अधिक बल देता है जबकि सामाजिक आर्थिक व सांस्कृतिक अधिकारों पर कम जोर देता है। उदाहरण स्वरूप घोषणापत्र में नागरिक व राजनितिक अधिकारों की चर्चा अनुच्छेद 3 से 21 अर्थात् 19 अनुच्छेदो में किया गया है जबकि सामाजिक आर्थिक व सांस्कृतिक अधिकारों हेतु मात्र 6 अनुच्छेदों का प्रयोग है। इसका परिणाम यह हुआ कुछ सोवियत संघ के देशों के विपरीत, अधिकतर पश्चिमी देशों ने नागरिक व राजनितिक अधिकारों को अधिक महत्व देते हुए इसे न्यायिक–अधिकार (Juridical Right) के रूप में वैधानिक रूप दिया लेकिन सामाजिक आर्थिक व सांस्कृतिक अधिकारों पर कम महत्व देते हुए गैर–न्यायिक अधिकार के रूप में राज्यों के स्व–विवेक पर छोड़ दिया। गौरतलब है कि आगे चलकर सोवियत संघ से अलग हुए तमाम देशों ने तथा अधिकतर दक्षिण एशियायी देशों ने भी ऐसा ही किया। भारतीय सविधान इसका एक अच्छा उदाहरण है। भारत में स्वतंत्रता, समानता जैसे तमाम राजनीतिक अधिकार तो संविधान के भाग – 3 में रखे गये जिन्हें न्यायिक दर्जा प्राप्त है अर्थात् राज्य की न्यायपालिका इन अधिकारों का पालन सुनिश्चित करती है और उल्लघन होने पर दंड का प्रावधान किया गया है जबकि गरीबी, शिक्षा, पोषण, स्वास्थ्य जैसी अधिकतर सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक अधिकारों पर कम महत्व देते हुए गैर–न्यायिक अधिकार के रूप में 'राज्य के नीति–निदेशक तत्व' को स्वीकार किया गया है। निश्चित ही नागरिक व राजनितिक अधिकारों के होने के बाद भी उसका परिणाम अधिकतर महत्वहीन हो जाता है क्योकि गरीबी, भुखमरी व अशिक्षा का शिकार होने वाला समाज इन अधिकारों का उपभोग ही नहीं कर सकता। सांस्कृतिक हीनता किसी समाज अथवा व्यक्ति के लिए बेहद घातक होता है। ऐसे भय के वातावरण में वह कभी भी अपने इन अधिकारों का प्रयोग नहीं कर पाता है।

मानवाधिकार का विस्तार : पर्यावरणीय अधिकार

उपर्युक्त विवरण में हम पाते है की 20वीं सदी में हुए विश्वयुद्ध ने मानव अधिकार ही नहीं बल्कि मानव अस्तित्व के लिए गहरा संकट पैदा किया। ऐसे में वैश्विक समाज द्वारा सारभौमिक घोषणा–पत्र के माध्यम से मानवाधिकर को स्पष्ट रूप में परिभाषित व संस्थाकृत करने की कोशिश किया गई। आज 21वीं सदी में मानव अस्तित्व को एक नये प्रकृति की संकट का सामना करना पड़ रहा है। यह संकट है – 'पर्यावरणीय क्षरण का'। गौरतलब है की जीवन (Life), जीवनयापन (Lifehood), संस्कृति (Culture) और समाज (Society) ये मानव अस्तित्व के मौलिक पहलू है अतः इनका रख–रखाव व सुनिश्चितता/मजबूती (Enhancement) एक मौलिक मानवीय अधिकार है। पर्यावरण, जो इस मौलिक पहलू का एक अभिन्न हिस्सा है, का क्षरण और प्राकृतिक संसाधनों का दुरुपयोग एक तरह खुद में मानव अधिकार का दुरुपयोग है और अन्य कई मानव अधिकारों के दुरुपयोगों को जन्म देता है।

आज पर्यावरणीय क्षरण जैसे–वन–उन्मूलन, रेगिस्तान का बढ़ना, जनसंख्या विस्फोट व जलवायु परिवर्तन के कारण मानव जीवन को अनेक गम्भीर चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है जिनमें से निम्न तीन चुनौतियाँ महत्वपूर्ण है –

1. जीवन स्तर में गिरावट
2. स्वाथ्य संबंधित बीमारियाँ
3. शरणार्थी समस्या

आर्थिक रूप से कमजोर समूह प्रत्यक्ष रूप से प्राकृतिक संसाधनों पर पूरी तरह आश्रित होता है। ये भोजन से लेकर आवास व रोजगार के लिए इन्हीं जल–जंगल जैसे संसाधनों पर निर्भर रहते है। पर्यावरणीय क्षरण जल, जंगल, जमीन, वन्यजीव, जलीय जीव तथा जलवायु तथा मौसम प्रभावित करता है। ऐसे में इसकी सीधी मार यहाँ के लोगों को झेलनी होती है। बढ़ती जनसंख्या व नगरीकरण के परिणामस्वरूप इन प्राकृतिक संसाधनों के दोहन में वृद्धि हुई है, परिणामस्वरूप इसकी उपलब्धता में कमी आयी है। पर्यावरणीय समस्या व्यक्ति के प्राकृतिक संसाधनों तक पहुँच को कम करता है जो मानवीय जीवन स्तर को नकरात्मक रूप में प्रभावित करती है। इसका प्रभाव गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, कट्टरता, हिंसा, आतंक जैसी बढ़ती घटनाओं के रूप में देखा जा सकता है। इसी तरह गरीबी, हिंसा, आतंक जैसी अन्य घटनायें भी चक्रीय रूप में पर्यावरण पर बुरा प्रभाव डालती है।

वर्तमान में पर्यावरणीय क्षरण से उत्पन्न स्वाथ्य समस्याएँ गंभीर रूप लेती जा रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ के एक रिपोर्ट के अनुसार पूरे विश्व में एक वर्ष में लगभग दो मिलियन मृत्यु तथा एक बिलियन से अधिक बीमारियाँ केवल जल–प्रदूषण से होता है। जल संकट भी बड़ी समस्या है। शुद्ध जल की अनउपलब्धता से न केवल उत्पादकता प्रभावित होती है बल्कि आर्थिक क्रियाकलाप व गुणवत्ता भी बिगड़ जाती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के ही एक रिपोर्ट के अनुसार पूरे विश्व में एक वर्ष वायु–प्रदूषण के कारण लगभग 30,000–70,0000 लोगों की मृत्यु होती है। हाल ही में दिल्ली जैसे बड़े महानगरों में, हवा में पी.एम. जैसे हानिकारक कड़ो की अधिकता के कारण गंभीर स्वास्थ्य सम्बन्धी चुनौतियों का आगमन हुआ। इससे निपटने के लिए वाहनों के आवागमन पर रोक लगाई गई, जिसका सीधा प्रभाव अर्थव्यवस्था पर पड़ा। मिट्टी की गुणवत्ता में कमी, वनों की कटाई, जैव–विविधता की में आ रही कमी तथा मौसमी परिवर्तन इत्यादि का प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मानव स्वाथ्य पर नकरात्मक प्रभाव डाल रहा है।

जलवायु–परिवर्तन मौसम के चरम व्यवहार की मात्रा व तीव्रता को बढ़ा देता है। परिणामस्वरूप गर्म हवाओ का चलना, ग्लेशियर के पिघलने से समुद्र में जलस्तर का बढ़ना, बाढ़, सूखा, उष्ण–कटिबंधीय चक्रवात जैसी घटनाएँ तेजी से घटित होती है। वैसे इन घटनाओं

का प्रभाव सम्पूर्ण मानव समाज पर पड़ता है लेकिन सबसे अधिक मार–कोस्टल क्षेत्रों, छोटे–छोटे द्वीपीय देशों (Island), उपसहारन अफ्रीकीय क्षेत्रों और एशिया के डेल्टाई क्षेत्रों, जैसे संकटापन्न भूभागों में रहने वाले लोगों झेलना पड़ता है। इन क्षेत्रों के लोगों को ऐसी पर्यावरणीय घटनाओं के कारण मजबूरन अपना स्थान छोड़कर जीवन–यापन हेतु अन्य सुरक्षित स्थान पर पलायन करना पड़ रहा है। आज ऐसे लोगों के लिये पर्यावरणीय शरणार्थी (Environmental Refugees) शब्द का प्रयोग किया जाता है। वर्ष 2012 के दौरान लगभग 32.4 मिलियन लोगों को अपने परम्परागत घरों से अन्य सुरक्षित स्थानों पर स्थानान्तरित होना पड़ा।

आंतरिक विस्थापन निगरानी केंद्र के अनुसार, 2010 और 2011 के दौरान 42 लाख से अधिक लोग एशिया और प्रशांत महाद्वीप में विस्थापित हुए जो श्रीलंका की आबादी की तुलना में दोगुने से भी ज्यादा है। ऐसे लोग तूफान, बाढ़ और गर्मी और ठंडे तरंगों से विस्थापित हुए है लेकिन सूखा और समुद्र के स्तर में वृद्धि ने इनकी संख्या बढ़ा दिया। वैसे तो मूलभूत सुविधाओं के आभाव में विकासशील देशों पर इसका प्रभाव अधिक देखा जाता है लेकिन 2012 के पर्यवरणीय पलायन ने सम्पन्न देशों को भी बड़े पैमाने पर प्रभावित किया। भूमि के बंजरीकरण (Desertification) ने हाल ही में वैश्विक स्तर पर 100–200 मिलियन लोगों को प्रभावित किया है। हाल में उत्तरी अफ्रीका से पश्चिमी यूरोप की तरफ बड़े पैमाने पर पलायन हुआ है। (Re-thinking Policies to Cope with Desertification, 2006). पर्यावरणविदों का मानना है की यदि समुद्र स्तर में वृद्धि इसी तीव्रता से जारी रहा तो किरिबाती का 94,000 निवासियों वाला छोटा द्वीप 2070 तक पूरी तरह से पानी में डूब जाने की संम्भावना है। पर्यावरणीय शरणार्थी, सरकारों और नीति निर्माताओं के लिए विशेष रूप से कठिन समस्या है। उदाहरण के लिए बांग्लादेश में, समुद्र के बढ़ते स्तर के परिणामस्वरूप आये बाढ़ ने कई लोगों को सीमा पार करके भारत आने के लिए मजबूर किया है दूसरी ओर, सूडान में, सूखे ने उपभोग और पारंपरिक कृषि के लिए पानी के स्त्रोतों को कम कर दिया है, जिससे कई लोगों तक भोजन या पानी की पर्याप्त पहुँच न होने के कारण इन संसाधनों हेतु संघर्ष बढ़ता जा रहा है।

वैश्विक समाज द्वारा पर्यावरण सुरक्षा हेतु अनेक प्रयास किया जाता रहा है। सर्वप्रथम 1992 में रियो डी जनेरियो में 'पर्यावरण एव विकास' मुद्दें पर संयुक्त राष्ट्र संघ की बैठक हुई और जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र का ढाँचा तैयार किया गया (UNFCCC)। यह सुनिश्चित किया गया कि वैश्विक तापमान वृद्धि को कम करने का सामूहिक प्रयास किया जायेगा। 1995 में क्योटो प्रोटोकाल के तहत ग्रीन–हाऊस गैसों की मात्रा कम करने पर जोर दिया गया। आगे चलकर 2009 में कोपेनहेगन समिट, 2012 में दोहा बैठक तथा 2015 में पेरिस जैसे सम्मलेनों में पर्यावरणीय संकट को रोकने का प्रयास किया गया। इन प्रयासों के बावजूद यह गम्भीर समस्या मानवाधिकार व अस्तिव के लिए खतरा बना हुआ है।

साहित्य समीक्षा

मानव अधिकार एवं संस्कृति का गहरा संबंध है (Jack, Donnelly, 1989) सांस्कृतिक भिन्नता मानव अधिकार के सार्वभौमिकता पर सवाल उठाती है। सामान्य मान्यता है कि मानव अधिकार इसलिए बनाया गया क्योंकि व्यक्ति राज्य के खिलाफ एक सुरक्षा कवच चाहता था, जिससे राज्य उसकी गरिमा का उल्लंघन न कर सके। कुछ परम्परागत समाज में मानव अधिकार की रक्षा परम्पराओं द्वारा ही किया जाता है जबकि सामान्तया कुछ परम्परायें मानव अधिकार को नकारती है। उदाहरण के लिए भारत में कुछ परम्परायें जैसे पेड़–पौधों व कुछ प्राकृतिक संसाधनों को सजोना, जिससे पर्यावरण संरक्षण, और अन्ततः मानव अधिकारों का संरक्षण किया जाता है। वहीं दूसरी ओर जाति व्यवस्था व पुरुषसत्ता जैसी कुछ ऐसी परम्परायें हैं जो सीधे तौर पर मानव अधिकारों का हनन करती है। कुछ महत्वपूर्ण संरचनाएँ हैं जो मानवधिकार को लागू करती है। राज्य के पास किसी नियम को लागु करने की को रसीव अथॉरिटी है । राज्य एक ऐसी सामाजिक संविदा पर आधारित संस्था है जो संविधान के माध्यम से ऐसा कर पाती है। पर्यावरण संरक्षण हेतु राज्य के अलावा अन्य संस्थाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है।

पर्यावरण अधिकार, संविधान और लोकतंत्र के बीच घनिष्ठ अर्न्तसम्बंध है। (DAvid R. Boyd, 2012) 1970 के दौर में जब यह पाया गया कि एक तरफ पर्यावरण का तेजी से क्षरण हो रहा है और उसका नकारात्मक प्रभाव भी दिख रहा है वहीं दूसरी तरफ राज्य व सरकारों इस मुद्दे पर तटस्थ बैठी है। कोई कारगर योजना नहीं लागू कर पा रही है। इस दौरान पर्यावरण क्रांति का जन्म हुआ, इस तरह सामाजिक दबाव के कारण अधिकतर लोकतांत्रिक देशों ने अपने संविधान में बड़े पैमाने पर संशोधन किया और पर्यावरण संरक्षण व शुद्ध जल, वायु व पर्यावरण अधिकार को संवैधानिक घोषित किया गया। इस तरह पर्यावरण क्रांति वैश्विक स्तर पर लोकतांत्रिक संविधानों में संशोधन का वाहक बना।

मानव अधिकार, पर्यावरण व विकास को एक दूसरे के साथ कैसे देखा जाना चाहिए?

आइशा दिआस (Dias : 2000)[8] का मानना है कि प्राप्त मानव अधिकार को दृढ़ता से लागू करके पर्यावरण को संरक्षित किया जा सकता है। साथ ही इन अधिकारों का विस्तार पर्यावरण से सम्बंधित अधिकारों अर्थात् 'पर्यावरण का अधिकार' (Right to Environment) तक किया जाना चाहिए।

मानव अधिकार व पर्यावरण संरक्षण दोनों को साथ रखकर, मानव जाति के लिए उच्च गुणवत्तापूर्ण सतत् जीवन सुनिश्चित करने में टकराव हो सकता है। चूंकि मानव अधिकार का प्राथमिक उद्देश्य होता है, उपस्थित व्यक्ति व समुदाय का सरंक्षण होना, जबकि पर्यावरणीय नियमों का उद्देश्य वर्तमान आवश्यकता व क्षमता में तालमेल बनाकर वैश्विक जीवन को भविष्य तक ले जाना है।

1990 के दौरान विकास का मापदण्ड बदला

गया। इसी दौरान मानव विकाश सूचकांक (H.D.I.) तथा मानव गरीबी सूचकांक (H.P.I.) जारी किया गया जिससे गुणवत्तापूर्ण जीवन को बल मिला। विकास को पर्यावरण संरक्षण का हिस्सा माना गया।[9]

विकास व पर्यावरण संरक्षण को लेकर एक विवाद वैश्विक उत्तर व वैश्विक दक्षिण के बीच देखने को मिलता है।[10] यह टकराव राजनीतिक अर्थव्यवस्था[11] दृष्टिकोण से समझा जाना चाहिए। व्यापार आधारित अर्थव्यवस्था के प्रचलन के साथ–साथ असमान आर्थिक विनिमय का जन्म हुआ। चूंकि व्यापार से कुछ देश अधिक और कुछ कम, लाभ कमा पाते हैं इसी को आधार बनाकर पर्यावरणीय जिम्मेदारियों के विनियम में भी असमानता की मांग किया जाता है। धनी देश अधिक तथा गरीब देश कम पर्यावरणीय उत्तरदायित्व को उठायेगा। ऐसे में वैश्विक पर्यावरणीय नियमन के टकराव व सौदेबाजी देखने को मिलती है।

धारणा एवं परिकल्पना

मानव अधिकार मानवीय गरिमा सुनिश्चित करने का माध्यम है। आज पर्यावरणीय क्षरण ने मानव अस्तित्व व गरिमा को खतरे में डाला है। सामान्तया मानव अधिकार सार्वभौमिक नहीं हो सकता लेकिन पर्यावरण से सम्बंधित अधिकार अवश्य ही वैश्विक स्तर पर लागू किया जाना चाहिए। पर्यावरण संरक्षण को संवैधानिक दर्जा देना होगा। जिससे व्यक्ति के लिए ''पर्यावरण का अधिकार'' सुनिश्चित किया जा सके। ऐसे में मानव अधिकार की परम्परागत अवधारणा का विस्तार अतिआवश्यक होगा।

मानव अधिकारों में बहुलता होती है ऐसा दावा नहीं किया जा सकता कि मानवाधिकार का एक मात्र निश्चित ढाँचा होता है।

निष्कर्ष

चूँकि बदलाव प्रकृति का नियम है। समय एव परिस्थितियों के साथ मानवीय जीवन में अनेक परिवर्तन होते रहे है। इन परिवर्तनो के साथ मानव जाती के समक्ष नयी–नयी प्रकृति की चुनौतियों का उभार होता रहा है और इनसे निपटने के लिए अलग–अलग तरीके भी अपनाये जाते रहे है। ऐसे में यह कहा जा सकता है कि मानवाधिकार की ऐसी कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती जो प्रत्येक समय एव परिस्थितियों में मान्य हो। समय–समय पर मानवाधिकार की परिभाषा और उनके संरक्षण के उपाय पर विचार करते रहना होगा। इसी क्रम में पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए मानवाधिकार के उस सारभौमिक घोषणापत्र 'जो की एक विशेष राजनीतिक व वैचारिक घटनाक्रम की उपज है' पर पुनर्विचार करना होगा। इससे पहले की पर्यावरणीय संकट मानव जाती के अस्तित्व को मिटा दे, हमारे वैश्विक समाज को यह तय करना होगा की किसी भी व्यक्ति को पर्यावरणीय शरणार्थी का दर्जा न प्राप्त हो। प्रत्येक व्यक्ति का यह जन्मसिद्ध अधिकार होना चाहिए की वह शुद्ध प्राकृतिक हवा वातावरण में सुरक्षित जीवन–यापन करे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *Boy, David Richard, 2011, The Environmental Rights Revolution: A Global Study of Constitutions, Human Right and environment ,UBC press , Toronto*
2. *Chris Brown (1997) Universal human rights: A critique, The International Journal of Human Rights, 1:2, 41-65, DOI: 10.1080/13642989708406666*
3. *Dias, Ayesha ,2016, HUMAN RIGHTS, ENVIRONMENT AND DEVELOPMENT:WITH SPECIAL EMPHASIS ON CORPORATE ACCOUNTABILITY ,besed on HDR 2000*
4. *Editorial Board. Europe should see refugees as a boon, not a burden. The New York Times. September 18, 2015; A18*
5. *European Agency for Fundamental Rights. Cost of exclusion from healthcare: the case of migrants in an irregular situation. 2015. Available at: http://fra.europa.eu/en/publication/2015/cost-exclusion-healthcare-case-migrants-irregular-situation*
6. *Freeman, Michael (2002). Human rights : an interdisciplinary approach. Cambridge: Polity Press*
7. *Magnarella Paul J.(2000) Questioning the Universality of Human Rights, New*
8. *Howell, George, THE NORTH-SOUTH ENVIRONMENTAL CRISIS: AN UNEQUAL ECOLOGICAL EXCHANGE ANALYSIS, New School Economic Review, Volume 2(1), 2007, 77-99*
9. *Kothari, Ashish and Patel,Anuprita (2006) Environment and Human Rights: An Introductory Essay and Essential Readings,Rajika Press Services Pvt. Ltd,York: St. Martin's Press*
10. *Morsink, J 2009. Inherent Human Rights: Philosophical Roots of the Universal Declaration, Philadelphia: University of Pennsylvania Press*
11. *man Right to A Safe Environment," Yale Journal of International Law, 18: 281–295*
12. *Nickel, J., 1993. "The HuAhmad, Rafi,Islam, Universal Human Rights, and Cairo Declaratio*
13. *Orend, B,2002. World Poverty and Human Rights: Cosmopolitan Responsibilities and Reforms, Cambridge: Polity Press*
14. *Tharoor, Shashi, Are Human Rights Universal? WORLD POLICY JOURNAL,Volume XVI, No4, WINTER 1999/2000*
15. *Thomson, J., 1990. The Realm of Rights, Cambridge, MA: Harvard University Press,*
16. *13. Donnelly, Jack,2003, Universal Human Rights in Theory and Practice Cornell University Press*

पादटिप्पणी

1. *अमेरिकी स्वतंत्रता घोषणा पत्र में ऐसा माना गया है कि लोगो को उसके सृष्टिकर्ता द्वारा ही जीवन (लाइफ)स्वतंत्रता (Liberty) खुशहाली (Happiness) का प्राकृतिक अधिकार मिला होता है।*
2. *क्योकि सामान्य परिस्थितियों में मानव अधिकार हर समय और हर जगह लागू होता है अतः इसे सारभौमिक भी माना जाता है।*
3. *अमरीकी (1776) फ्रांस (1789)।*
4. *सैमुअल पी. हंटिंगटन*
5. *सारभौमिक घोषणापत्र मानव जीवन के राजनीतिक, आर्थिक, संस्कृति जैसी विभिन्न पहलुओं पर जोर*

देता है – हम सभी प्राकृतिक रूप से समान व स्व्वतंत्र पैदा हुए है अतः किसी भी व्यक्ति के साथ भेदभाव नहीं होगा। हर किसी को जीने का अधिकार है। दासप्रथा जैसी अन्यायपूर्ण परम्पराएँ नहीं होगी। आप कहीं भी जाये आपका सामान्य मानवीय अधिकार हमेशा सुरक्षित रहेगा। कानून के समक्ष हम सब एक समान होगे। आपका मानव अधिकार कानूनी प्रक्रियायो और नियमो द्वारा रक्षित किया जायेगा। किसी व्यक्ति अथवा समूह के साथ अन्यायपूर्ण भेदभाव नहीं होगा, यद्यपि तार्किक व युक्तिसंगत भेदभाव किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तिगत निजता का ध्यान रखा जायेगा।

6. *मानवाधिकार की सार्वभौमिकता का इसी तर्क पर चुनौती किया जाता है।*
7. *Jack, Donnally (2003), अपनी पुस्तक में मानव अधिकार व संस्कृति के लिए अन्तर्सम्बन्ध को दिखाते है।*
8. *Dias, Diass, Ayesh 2000, Human Right, Environment and Development : With Special Emphasis on Corporate Accountability.*
9. *H.D.I. में जीवपत्पासा, शिक्षा स्तर, प्रति व्यक्ति आय इत्यादि पहलुओं को शामिल किया गया।*
10. *Howell George, 2007, New School Economic Review, Vol. 2.*
11. *यह राजनीति विज्ञान की ऐसी शाखा है जहां राजनीतिक घटना को आर्थिक चश्में से भी देखा जाता है।*